❑ राधेश्याम मिश्र

भगवत्प्राप्ति का सर्वोत्तम साधन : जनसेवा

भगवत्प्राप्ति के अनेक साधन हैं— कर्म, ज्ञान, भक्ति, प्रपत्ति आदि। परन्तु सर्वोत्तम साधन है जनसेवा, दीन दुखियों की सेवा। जन सेवा के अनेक रूप हैं, अनेक प्रकार हैं और हैं अनेक क्षेत्र। दीन-दुखियों की सेवा सुश्रुषा ही सबसे बड़ी उपासना है। वियोगी हरि ने लिखा है—

दीनन देख घिनात जे,नहिं दीनन सो काम।
कहां जानि वे लेत हैं दीनबन्धु को नाम।।

श्री मद्भागवत में स्थान-स्थान पर इसका उल्लेख मिलता है। श्री नाभादासजी ने 'भक्तमाल' में अनेक ऐसे भक्तों के चरित्रों को दर्शाया है जो दिन-रात जन-सेवा में ही लगे रहते थे और इसी को भगवत्प्राप्ति का सर्वोत्तम साधन समझते थे और जो इसी के द्वारा कृत-कृत्य भी हुए। इसके साक्ष्य की कोई आवश्यकता नहीं। जब आप किसी दुखी मनुष्य की कुछ मदद करते हैं तब आप सोचते हैं कि मेरे इस कार्य से भगवान खुश होंगे, आपकी आत्मा प्रफुल्लित और रोमांचित हो उठती है। जनता में जनार्दन का निवास है। चलती-फिरती नारायण की मूर्तियों की अर्चना, सेवा का महत्व भक्ति से बहुत बढ़कर है। वियोगी हरि ने कहा है—

मैं खोजता तुझे था जब कुंज और वन में,
तू ढूंढता मुझे था तब दीन के वतन में।...
तू आह बन किसी की मुझको पुकारता था
मैं था तुझे रिझाता संगीत में, भजन में।

ईश्वर को पाना, उसकी महिमा को जानना, उसके आदि-अन्त को जानना वास्तव में बड़ा कठिन है। यदि 'एकै साधे सब सधे, सब साधे सब जाय' वाली उक्ति को चरितार्थ करके मात्र जनसेवा ही लक्ष्य हो जाय तो भगवत्प्राप्ति सुनिश्चित है। प्रश्न है क्या भगवान की प्राप्ति सम्भव है? यदि है तो जो भी साधन शास्त्रों में वर्णित हैं कर्म, ज्ञान, भक्ति, वैराग्य आदि उन सभी में उन्हें कहां खोजा जाय? ईश्वर निराकार है या साकार? अनेकानेक प्रश्न सामने आते हैं और उनके अनेकानेक समाधान और मत वेद, पुराण और धर्म ग्रन्थों में वर्णित हैं। गीता के अठारहवें अध्याय के छियालिसवें श्लोक में तो यहां तक कहा गया है, ईश्वर सभी प्राणियों के हृदय में निवास करता है—

ईश्वरः सर्व भूतानाम् हृद्देशे अर्जुन तिष्ठति।
भ्रामयन् सर्व भूतानि यन्त्र रूढ़ानि मायया।

इसलिए गीता ने ''समत्वं योग उच्यते'' की घोषणा की है। गीता का साम्यदर्शन गणित का समीकरण नहीं है, न रेखागणित का साध्य ही है जहां एक त्रिभुज को दूसरे के बराबर सिद्ध करने हेतु दोनों त्रिभुजों को इस प्रकार रखा जाता है कि उनकी भुजायें एक दूसरे पर फिट आ जाय। हां, गणित के अनुसार उसके पास एक ईश्वर है और एक ही आत्मा है। ईश्वर ही आत्मा बनकर समान भाव से सभी प्राणियों में निवसता है। आत्मा उस दिव्य प्रकाश का खंड है जिसको मानस में महात्मा तुलसी ने भी 'ईश्वर अंश जीव अविनाशी' कहकर प्रतिपादित किया है।

इस प्रकार हम यह कह सकते हैं कि नाम भिन्न-भिन्न होने पर भी वह परमब्रह्म सत्य सनातन, शाश्वत, चिरन्तन सब कुछ होते हुए सभी जीवों में प्रदीप्त है, प्रकाशित है अतः उसे खोजने की आवश्यकता नहीं है। वह तो अगोचर होते हुए भी गोचर है और सहज प्राप्य है अगर हम अपनी दृष्टि को थोड़ा सा परिवर्तित कर लें और—

सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः,
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद् दुख भाग भवेत्।

इस विश्व में सब सुखी हों, सब नीरोग हों, सब कल्याण-मंगल का दर्शन करें, कोई भी लेशमात्र दुख का भागी न हो।

सर्वेस्तरतु दुर्गाणि सर्वो भद्राणि पश्यतु।
सर्वः सद्बुद्धिमाप्नोतु सर्वः सर्वत्र नन्दतु।।

कठिनाइयों से, विपत्तियों से सब त्राण पायें। सब मंगल का दर्शन करें, सब सदबुद्धि को प्राप्त हों और सब सर्वदा सर्वत्र आनन्द लाभ करें, ऐसी हमारी भावना है। यदि हमारी भावना ऐसी होगी तो हमारा आचरण भी होगा इसी के अनुरूप। हम अपने उन बन्धुओं पर मानव मात्र या जीव मात्र पर प्रेम और कृपा की वर्षा करेंगे। दया, करुणा, दान, सेवा, मैत्री आदि भाव ही क्रमशः भगवत्प्राप्ति में सहायक सिद्ध होते हैं। वैसे सभी गुण क्रमशः एक दूसरे के परस्पर सहयोगी हैं और किसी एक के आने से ही सारे के सारे गुण क्रमशः आने लगते हैं। देवर्षि नारद ने युद्धिष्ठिर के द्वारा पूछे जाने पर मनुष्य मात्र के तीस धर्मों

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

का विवेचन किया था मगर उन सभी धर्मों का सार उपरोक्त गुणों में ही सन्निहित है।

उन्होंने तीस लक्षणों में सत्य, दया, तपस्या शौच, तितिक्षा, आत्म-निरीक्षण, बाह्य इन्द्रियों का संयम, आन्तर इन्द्रियों का संयम, अहिंसा, ब्रह्मचर्य, त्याग, स्वाध्याय, सरलता, संतोष, समदृष्टि, सेवा, दुराचार से निवृत्ति, लोगों के विपरीत चेष्टाओं के फल का अवलोकन, मौन, आत्मविचार, प्राणियों को यथा योग्य अन्नादि दान, समस्त प्राणियों में विशेषकर मनुष्य में आत्मबुद्धि, इष्ट देवबुद्धि, भगवन्नाम स्मरण, कीर्तन, सेवायज्ञ, नमस्कार, साख्य, दास्य और आत्मनिवेदन आदि को प्रतिपादित किया है। परन्तु इन सभी का मूल है प्रजापति का शिक्षा मन्त्र— "द" "द" "द"– दान, दया और दमन। उन्होंने कहा है—

देव दनुज मानव सभी लहै परम कल्याण।
पाले जो "द" अर्थ को दमन, दया अरू दान।।

दया, करुणा, सेवा, दान आदि समानार्थी शब्द न होते हुए भी मूल में एक हैं। मानव सेवा से बढ़कर कोई दूसरी सेवा नहीं। इसके विभिन्न रूप हैं, शारीरिक, आर्थिक आदि। इसके लिए लोग बहुजन-हिताय, बहुजन-सुखाय की भावना से देवालय, विद्यालय, औषधालय, भोजनालय, अनाथालय, गौशाला, धर्मशाला आदि सर्वजनोपयोगी स्थानों का निर्माण बिना किसी यश कामना से भगवत्प्रीत्यर्थ करते हैं।

वस्तुत: ये सेवायें मानव कल्याणकारी हैं अत: ये हमें ईश्वर के काफी करीब ला देती हैं। श्रीमद्भागवत में अपने द्वारा कमाये गये धन के दशमांश को लोक-कल्याण में लगाने का स्पष्ट विवेचन है, किन्तु यह साधारण आय वालों के लिए है। वैभवशाली, उदारचेता और उच्चकोटि के लोगों के लिए पांच भागों में ही धन बांटने का विधान है—

धर्माय यशसे अर्थाय कामाय स्वजनाय च।
पंच्चधा विभजन वित्तमिहामुत्र च मोदते।।

धर्म, यश, अर्थ (व्यापार आदि आजीविका) काम (जीवनोपयोगी भोग) स्वजन (परिवार) के लिए— इस प्रकार पांच प्रकार के धन का विभाजन करने वाला इस लोक और परलोक में भी आनन्दप्राप्त करता है, ऐसा वर्णन है। बिना दान दिये परलोक में भोजन नहीं मिलता ऐसी किंवदन्ति है। कहा जाता है कि विदर्भ देश में वेत नामक एक राजा राज्य करते थे। वे सतर्क होकर राज्य का संचालन करते थे। उनके राज्य में प्रजा सुखी थी। कुछ दिनों बाद उनके मन में वैराग्य आया। वे अपने भाई को राज्य सौंपकर बन में तपस्या करने चले गये। उन्होंने जिस लगन से राज्य का संचालन किया उसी लगन से हजारों वर्ष तक तपस्या की। उत्तम तपस्या के बल पर उन्हें ब्रह्मलोक की प्राप्ति हुई। वहां उन्हें सब तरह की सुविधा मिली, किन्तु भोजन का कुछ प्रबंध न था। भूख से पीड़ित उनकी इन्द्रियां शिथिल पड़ गईं, विकल हो गईं। उन्होंने ब्रह्माजी से पूछा, पितामह यह लोक भूख-प्यास रहित माना जाता है फिर किस कर्म के विपाक से मैं भूख से सतत पीड़ित हो रहा हूं। ब्रह्मा जी ने कहा, 'वत्स तुमने मृत्युलोक में कुछ दान नहीं किया, किसी को कुछ खिलाया-पिलाया नहीं। वहां बिना कुछ दिये परलोक में भी खाना नहीं मिलता'।

भाव यह है कि मनुष्य को अपनी शक्ति सामर्थ्य के अनुसार मानव सेवा हेतु तन, मन, धन अर्पण करना चाहिए। सभी दानों में विद्या दान का विशेष महत्व है। यह ऐसा दान है जो बच्चों को शिक्षित कर स्वावलम्बी बना देता है। पूर्ण शिक्षा वही है जो मानव को मानव बनने की शिक्षा दे। स्कूल, कालेज, विश्वविद्यालय के निर्माण में सहयोग देकर साथ-साथ उनके दैनिक कार्य प्रणाली में योगदान देकर हम मानव सेवा कर सकते हैं। विद्यालयों में संस्कार 'नैतिक शिक्षा' चारित्रिक शिक्षा और मूल में दया, सेवा और परोपकार की भावना का बीजारोपण ही सच्ची शिक्षा होगी जो फलवती होगी भविष्य में। औषधालय (अस्पताल) के निर्माण में सहयोगी होकर भी, हम जन-सेवा के कार्य में भागीदार बन सकते हैं, यह चाहे शारीरिक हो या आर्थिक। मूल में इसका उद्देश्य यहां भी पीड़ित, मानवता, दुखी, रोगी और असाध्यों की सेवा ही है। Services to mankind is sevices to God को बाइबिल भी स्वीकार करता है। उसमें एक कथा वर्णित है, एक घायल रोगी असहाय सड़क पर पड़ा था। वह चिल्ला रहा था, दया की याचना कर रहा था कि कोई भी उसे अस्पताल पहुंचा दे। उधर से अनेकानेक संभ्रान्त लोग निकले मगर किसी ने उसकी न सुनी। किसी को चर्च जाने की जल्दी थी तो किसी को मन्दिर या मस्जिद, मगर उन्हीं में एक ऐसा भी व्यक्ति था जो था तो साधारण मगर उसने उसे उठाया, प्राथमिक उपचार जो कर पाया किया और उसे निकटस्थ अस्पताल पहुंचाया। उसे न चर्च, नहीं मन्दिर की चिन्ता हुई वरन् उसने मानव पीड़ा, उसकी अन्तरात्मा की आवाज को भगवान की पुकार माना और उसकी मदद की। वास्तव में यही सच्ची ईश्वर सेवा है। कबीर ने भी मानव सेवा को सर्वोपरि बताया है और ईश्वर को दीन, दलित, दुखी और असहायों में ही देखा है। उन्होंने कहा है 'कबिरा सोई पीर है जो जानै पर पीर।' उन्होंने भगवान को मन्दिर, मस्जिद और गिरजाघरों में कैद नहीं माना। परोपकार को उन्होंने सबसे ऊपर माना। तुलसी ने भी कहा है—

पर हित बस जिनके मन माहीं। तिनकहं जग दुर्लभ कछु नाहीं।।

महर्षि व्यास ने भी— अठारहों पुराण का निचोड़ परोपकार, परसेवा को ही बताया है।

अष्टादशपुराणेषु व्यासस्य बचनद्वयं, परोपकाराय पुण्याय पापाय परिपीड़नम्।

वास्तव में जनोपयोगी संस्थायें लोक मातायें ही हैं। ये दीन, दुखी, अभावग्रस्त और जन साधारण को मां की सेवा प्रदान करती हैं, मां की तरह ही भरण-पोषण करती हैं। हम यदि इन संस्थाओं की हित रक्षा में अपना तन मन धन अर्पित करें तो यही होगी हमारी सच्ची जन सेवा और भगवत्प्राप्ति।

सच्चे सुख की अनुभूति तो उसे ही होती है जो उसे प्राप्त करता है उसका वर्णन नहीं हो सकता। रहीम की उक्ति है—

यों रहीम सुख होत है उपकारी के अंग।
बांटनवारे को लगे ज्यो मेहदी के रंग।।

सच्ची घटना है ग्रामीण पाठशाला की। विद्यालय के प्राथमिक कक्षा

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

के कुछ छात्राओं की एक प्रतियोगिता रखी गई और यह घोषणा की गई कि जिसका बस्ता जो कपड़े का बना होता है, सबसे अच्छा होगा उसे पुरस्कृत किया जाएगा। सभी को प्रतियोगिता में भाग भी लेना है। तिथि तय हुई और सभी बच्चे अपने अच्छे बस्ते (थैले) के साथ विद्यालय आए। केवल एक ही ऐसी बच्ची थी जो बिना थैले के विद्यालय आ गई थी। शिक्षकों ने उसे खूब डांटा और फटकारा, अन्त में एक शिक्षक ने उसे दुलार कर पूछा, 'बेटी तुमने ऐसा क्यों किया? तुमने इसकी चर्चा क्या अपने अभिभावकों से नहीं की?' बच्ची ने कहा, 'महाशय मैं भी बस्ते के साथ ही विद्यालय आ रही थी, मगर मार्ग में एक कुष्ठ रोगी अपने घावों के कारण बार-बार चिल्ला रहा था, कोई इसे ढक दे और इन मक्खियों से मेरी रक्षा करे। उसका दुख मुझसे बर्दाश्त नहीं हुआ। मैं भूल गई प्रतियोगिता और मैंने अपना बस्ता फाड़कर उसके घावों को ढक दिया'। इस घटना को सुनकर सभी स्तब्ध रह गए और जाकर देखे कि वह रोगी घावों को ढकने के कारण चैन से सो रहा है। अब शिक्षकों के हृदय में भी परिवर्तन हुआ जो उसे डाट फटकार रहे थे, उसकी दया के आगे नतमस्तक हुए। उन लोगों ने सोचा, हम भी उधर से ही निकले थे, चीख और पुकार भी सुनी थी मगर हमलोगों पर उस करुण पुकार का क्या कोई प्रभाव पड़ा? इस बालिका से हमें सीख लेनी चाहिए। पुरस्कार की घोषणा प्राचार्य ने की और सबसे अच्छा बस्ता का पुरस्कार उस बालिका को मिला जिसने अपने थैले को फाड़कर कुष्ठ रोगी के घावों को ढक दिया था। अपने समापन भाषण में उन्होंने छात्रों से निवेदन किया कि उस बालिका से सभी सीख लें और परसेवा व्रत का पालन करें।

उपरोक्त सभी घटनाओं का एक ही मकसद है जन सेवा, मानव सेवा और यह सम्भव है सामूहिक रूप में विराट स्तर पर और व्यक्तिगत रूप में छोटे-छोटे स्तर पर। सामाजिक संस्थाएं सेवा कार्य में अहम् भूमिका का निर्वाह कर रही हैं। वे सेवा के नित नये आयामों को कार्यान्वित कर रही हैं। जिस तरह जैसे भी हो "सर्वे भवन्तु सुखिन:" को साकार करने हेतु अहर्निश सेवामहे को चरितार्थ कर रही है। Self Employment (स्वरोजगार) हेतु महिला गृह उद्योग, कुटीर उद्योग, पुस्तक वितरण, औषधि वितरण, भोजन व्यवस्था, छात्रों के लिए कर्मकारी शिक्षा (Vocational Education) आदि में संस्थाएं रत हैं। विभिन्न स्कूल, कॉलेज, औषधालय, भोजनालय, अनाथालय, शिशु निकेतन आदि किसी न किसी रूप में जन सेवा में नित्य कार्यरत हैं। इनको हम पुष्पित-पल्लवित करें, यही संकल्प हो हमारा। इन्हें हम किसी भी रूप में नुकसान, क्षति न पहुंचायें न बाधक बनें। एक महात्मा एक गांव में पधारे। उनके सम्मुख कुछ ग्रामवासी इकट्ठे हुए और कहा, 'महाराज किसी ने द्वेष और ईर्ष्यावश मेरे खलिहान में आग लगा दी, जहां मेरे परिश्रम द्वारा एकत्रित सारी की सारी अन्नराशि थी। काफी क्षति हुई।' महात्मा ने कुछ देर तक सोचा फिर बोले, 'व्यक्तिगत द्वेष के कारण उसने केवल तुम्हारा ही नुकसान नहीं किया, उसने कीड़े-मकोड़े, पशु-पक्षी, साधु-संतों और अन्यान्य के हिस्से में प्राप्त अन्नराशि को नष्ट किया है। यह व्यक्तिगत नुकसान, हानि नहीं है यह है सामूहिक क्षति। नुकसान और जो सामाजिक क्षति करता है उसकी दशा शास्त्रों में बड़ी कठोर वर्णित है। खैर, ईश्वर साक्षी है कर्मफल अवश्य प्राप्त होगा'। तात्पर्य यह है कि व्यक्तिगत द्वेष आदि को सामाजिक संस्थानों पर न थोपें और न ही उसके चलते उसे नष्ट करें। अपने बल, पौरूष और शक्ति के अनुसार उसे पुष्पित और पल्लवित करें, यही होगी सच्ची सेवा प्राणिमात्र की और यही होगा भगवत्प्राप्ति का सच्चा साधन—

कामये दु:खतप्तानां प्राणिनामार्ति नाशनम्

सह शिक्षक, श्री जैन विद्यालय, कलकत्ता

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org